International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 9 Issue 6, June - 2019
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 6.939 |

कबीर साहित्य की प्रासंगिकता

डॉ शिवदयाल पटेल
सहायक प्राध्यापक हिंदी
शासकीय महाविद्यालय बरपाली,
जिला – कोरबा (छत्तीसगढ़)

हिन्दी साहित्य में सामान्य रूप से निर्गुण निराकार ब्रह्म के उपासकों को सन्त कहा जाता है। सगुन साकार ब्रह्म के उपासकों को भक्त कहा जाता है। यह केवल व्यावहारिक भेद है। सन्त भक्त थे और भक्त भी सन्त थे। आज जब पूरे विश्वमे धर्म के नाम पर आतंकवाद फैला हुआ है तब कबीर के दोहों को याद करना उन्हे जीवन मे उतारना बहुत प्रासंगिक लगता है। वे एक ही ईश्वर को मानते थे और कर्मकाँडों के घोर विरोधी थे। अवतार, मूर्ति, रोजा, ईद, मसजिद, मंदिर आदि को वे नहीं मानतेथे।कबीर के समय मे हिंदू जनता पर धर्मातंरण का दबाव था उन्होने अपने दोहों मे दोनो धर्मो के कर्मकाँडों का विरोध किया और ईश्वर केवल एक है इस बात को तरह तरह से लोगों को सहज भाषा मे समझाया। हिन्दी साहित्य में सामान्य रूप से निर्गुण निराकार ब्रह्म के उपासकों को सन्त कहा जाता है। सगुन साकार ब्रह्म के उपासकों को भक्त कहा जाता है। यह केवल व्यावहारिक भेद है। सन्त भक्त थे और भक्त भी सन्त थे। सन्त शब्द का शाब्दिक अर्थ बुद्धिमान, पवित्रात्मा और परोपकारी व्यक्ति माना गया है। भक्त, साधु, महात्मा सभी इस अर्थ में सन्त ही है। परशुराम चतुर्वेदी उसको सन्त कहते हैं, जिसने सत्रूपी परमतत्व का अनुभव कर लिया हो। श्री पीताम्बरदत्त बडथ्वाल ने सन्त शब्द की व्युत्पत्ति शांत शब्द से मानी है और इसका अर्थ निवृत्ति मार्ग या वैरागी किया है।

संकेतक– हिन्दी साहित्य, निर्गुण निराकार ब्रह्म, कबीर सन्त, सन्त काव्य, निर्गुण, लोकमंगल।

आचार्य विनय मोहन के अनुसार व्यावहारिक दृष्टि से इसका अर्थ है जो आत्मोन्नति सहित परमात्मा के मिलन भाव को साध्य मानकर लोकमंगल की कामना करता है।

कबीर सन्त के लक्षण बताते हुए कहते हैं।

नि, खैरी निहकामता साई सेती नेह
विषियों सूँ न्यारा रहै, सन्तन के अंग एह।

तुलसी ने सन्तों का गुणगाण करते हुए उनके लक्षण बताए हैं–

सव के ममतात्याग बटोरी। ममपद मनिह बाँध वर डोरी। परन्तु हिन्दी में सन्त से अभिप्राय निर्गुणोपासक भक्त के लिए रूढ सा हो गया है। अर्थात सन्त वह है जो निर्गुण का उपासक हो और सन्त साहित्य वह है। जिनमें निर्गुणपंथी कवियों की रचनाओं का संकलन हो। हिन्दी साहित्य में सन्त काव्य कबीर, दादू, नानक और सुन्दरदास आदि के काव्य को कहा जाता है। जबकि सूर, तुलसी आदि के साहित्य को भक्ति काव्य कहा जाता है।

एक विशिष्ट पद्धति के साधकों और कवियों के लिए सन्त शब्द का प्रयोग हमें कबीर से काफी पहले महाराष्ट्र के निर्गुणोपासक कवियों के लिए होता हुआ मिलता है। महाराष्ट्र में विठ्ठल या वारकरी सम्प्रदाय के साधकों को सन्त कहा जाता है। सन्त नामदेव, सन्त ज्ञानेश्वर, सन्त

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 9 Issue 6, June - 2019
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 6.939 |

तुकाराम, सन्त एकनाथ आदि सभी महाराष्ट्र के थे। महाराष्ट्र में महानुभाव सम्प्रदाय नामक एक निर्गुणोपासक सम्प्रदाय का भी काफी प्रभाव रहा है। इस सम्प्रदाय के प्रवृत्तक सन्त पुण्डलिक माने जाते हैं। ज्ञानेश्वर, नामदेव, एकनाथ आदि सन्त कवि इसी सम्प्रदाय के अनुयायी थे। महाराष्ट्र के इन सन्त कवियों में अधिकांशने हिन्दी में भी कविताएँ लिखी थी। हिन्दी साहित्य में जो निर्गुणोपासक सन्त काव्य की परंपरा मिलती है वह इसके पूर्व महाराष्ट्र में काफी प्रचार पा चुकी थी और कबीर आदि उसी परम्परा के विकास की सशक्त कड़ी हैं।

सन्त काव्य की लगभग सभी विशेषताएँ आज भी प्रासंगिक है, आज भी उसका महत्व अक्षुण है। निर्गुण ईश्वर में विश्वास, बहुदेववाद तथा अवतारवाद का विरोध, जाति पाति भेद–भाव का विरोध, रूढ़ियों और आडम्बरों का विरोध, सद्‌गुरु का महत्व, भजन तथा नामस्मरण को महत्व, लोकसंग्रह की भावना, रहस्यवाद, श्रृंगार वर्णन इन सभी विशेषताओं को जव हम देखते हैं तो आज भी वह प्रासंगिक है। निर्गुण भक्ति का मूल तत्व है निर्गुण सगुण से परे अनादि, अनन्त, अनाम ब्रह्म का नाम जय सन्तों का ईश्वर निर्गुण और एक है। एक तरफ वह अद्वैतवादी ब्रह्म और सूफियों के खुदा के समान अरूप अनाम सर्वव्यापी आदि बना रहता है। दूसरी और कहीं–कहीं सगुण रूप की भी झलक दे जाता। सन्तों का ईश्वर सदैव उनके हृदय में ही निवास करता है। कबीर का कहना है जैसे कस्तुरी मृग की नाभि में रहती है। और वह व्यर्थ ही उसे वन में ढूंढने के लिए भटकता फिरता है। उसी तरह राम घट–घट व्यापी है उसे बाहर ढूंढने की आवश्यकता नहीं।

ना मै मन्दिर ना मै मस्जिद ना कावे कैलाश में
मोहे कहाँ ढूंढे बंदे
मै तो तेरे पास है।

सभी वर्णों और जातियों के लिए वह निर्गुण एकमात्र ज्ञानगम्य है। सन्तों का यह ब्रह्म सगुण परम तत्व प्रतीत होता है, जो सन्तों की मौलिक उद्‌भावना रही है। उन्होंने अपने इस निर्गुण निराकार ब्रह्म को नाम दिये हैं जैसे राम, कृष्ण, केशव, गोपाल, करीम आदि। सन्तों ने नामजप को साधना का आधार माना है। नाम ही भक्ति और मुक्ति का दाता है। इन्होंने ईश्वर–प्राप्ति के लिए प्रेम और नामस्मरण को परमावश्यक माना है।

पोथी पढि पढि जग मुआ, पंडित भया न कोड
ढाई आखर प्रेम का पढे सो पण्डित होई।

सन्त सामाजिक क्रातिकारी थे। उन्होंने हर प्रकार के सामाजिक अन्याय का विरोध किया है। जाति पाति की विषमता, धनी निर्धन का भेद, छुआछुत, हिन्दू मुसलमान में पाये जानेवाले भेदभाव की उन्होंने खुलकर निन्दा की थी और मानवमात्र को समान मानने की आवाज उठाई थी। ये लोग एक सार्वभौम मानव धर्म के प्रतिष्ठापक थे। उनकी दृष्टिकोण यह था कि जाति या धर्म के आधार पर किसी को उँचा या नीचा नहीं समझना चाहिए। सब उसी एक खुदा के बंदे हैं और सब को समान रूप से भजन करने का अधिकार है–

जाति पांति पूछे नहीं कोई
हरि को भजे सो हरि का होई। – कबीर

प्रायः सभी सन्त कवियों ने रूढियों, मिथ्या आडम्बरों और अन्धविश्वासों की कटू आलोचना की है। उनके अनुसार भक्ति आडम्बरविहीन होती है। साधना मार्ग को व्यावहारिक एवं सरल स्वरूप प्रदान करने में ही सन्त मत की सार्थकता है। इसका कारण सन्तों का सिद्धों और नाथपथियों

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 9 Issue 6, June - 2019
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 6.939 |

से प्रभावित होना है। इन्होंने मूर्तिपूजा, धर्म के नाम पर की जानेवाली हिंसा, तीर्थ, व्रत, रोजा, हज आदि विधि–विधानों, बाह्य आडम्बरों आदि का डटकर विरोध किया है। सन्त कबीरदास एक और पंडितों को खरी खोटी सुनाते थे तो दूसरी ओर मुल्लाओं की कटु आलोचना करते थे। एक ओर मन्दिर तथा तीर्थाटन आदि की निस्सारता बताते हैं तो दुसरी और मस्जिद और हज्ज–नमाज की निरर्थकता सिद्ध करते हैं। वे कहते हैं.

अरे इन दोऊन राह न पाई
हिन्दुन की हिन्दुआई देखी तुरकन की तुकाई।

डॉ. शिवदान सिंह चौहान के शब्दों में श्यह कहकर कि साई के सब जीव हैं कीरी कुंजर दोय उन्होंने मानव मात्र की समानता का सिद्धांत प्रचारित किया और ईश्वर की उपासना के लिए सबके लिए समान अधिकार की मांग की। कई जगह कबीर ने बड़े ही कडे शब्दों में इन आडम्बरों और अन्धविश्वासों का विरोध किया है। सन्त काव्य का महत्वपूर्ण तत्व है वे मानव को एक ऐसे विश्वव्यापी धर्म के सूत्रों में निबद्ध करना चाहते थे जहां जाति, धर्म, वर्ग और वर्ण सम्बन्धि भेद न हो। साधना का यह द्वार सबके लिए खुला था।

सन्त काव्य की महत्वपूर्ण विशेषता है लोक कल्याण की उत्कट भावना। सन्त कवि हिन्दुओं में प्रचलित विभिन्न मत मतान्तरों को दूर कर हिन्दू मुस्लिम विद्वेष, सामाजिक और धार्मिक कुरीतियों को दूर कर एक ऐसी उपासना पद्धति का निर्माण करने के लिए प्रयत्नशील थे जिसे समाज का प्रत्येक व्यक्ति बिना किसी संकोच के अपना सके। उन्होंने अपनी भक्ति को ऐसा रूप प्रदान किया था जो व्यक्तिगत न रहकर सामाजिक उपासना का रूप ही अधिक रहा है।

सन्त काव्य का प्रेरणा स्त्रोत था सामान्य मानव का हित साधन। सन्त कवियों ने समाज कल्याण का मार्ग अपनाया। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में शोषित और प्रताडित मानव की प्रवृत्तियों और भावनाओं का यथार्थ चित्रण किया है । सन्त काव्य सर्वजन की मंगलभावना करनेवाले भक्तों के सरल हृदय की सहज अनुभूति का चित्रण है। यह वह प्रकाश स्तम्भ है जो निराशा, प्रतिशोध और प्रतिहिंसा के अन्धकार में भटकते हुए मानव समाज को शताब्दिओं से प्रकाश दे रहा है और भविष्य में भी मार्ग प्रदर्शित करता रहेगा। सन्त काव्य का लक्ष्य था सामान्य अशिक्षित जनता में सत्य का निरुपन करना, करनी कथनी के तारतम्य पर बल देना तथा नाम के माधुर्य को जनता तक पहुंचाना। सन्तों का व्यक्तित्व सच्चे अर्थों में संवेदनशील था उनका मानस स्वच्छ था। निर्गुण काव्य आचरण की पवित्रता का संदेश लेकर जनता के सामने आया है।

सन्त कबीर के लिए सबसे बड़ा सत्य मानव है। वे मानव की अवहेलना सहन नहीं कर पाते। कबीर साहित्य का महत्वपूर्ण अंश वही है जिसमें उन्होंने भेदभाव और सामाजिक अन्याय के विरोध में अपनी आवाज को पूरी शक्ति और दृढ़ता के साथ उठाया है। वह उन सभी बातों पर चाहे धार्मिक हो या सामाजिक कसकर आघात करते थे जो किसी भी रूप में वर्ग भेद वर्ण भेद की भावना को बढ़ावा देती है। मन्दिर, मस्जिदों में जो आडम्बर और पाखंड है उन्होंने उसका कठोर और कटू शब्दों में तिरस्कार किया है। धनी निर्धन के भेद भाव को वे स्वीकार नहीं करते । उनके दृष्टि से निर्धन वही है जिसके हृदय में राम नहीं ।

निरधन सरधन दोनो भाई ।
प्रभु की कला न मेटी जाई, कही कबीर निरधन है सोई।
जाके हिर है राम न होई।

यह कबीर के विचार आज भी प्रासंगिक है।

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 9 Issue 6, June - 2019
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 6.939 |

कबीर के इसी लोककल्याण के कारण आलोचकों ने उन्हें अपने युग का गांधी कहा है। जिस प्रकार गांधी और नेहरू का साहित्य युग–निर्माताओं का साहित्य रहा है, उसी प्रकार कबीर का साहित्य भी युगनिर्माता का साहित्य है। युग निर्माताओं द्वारा रचित साहित्य में व्याप्त लोक कल्याण की भावना ही उसे स्पृहणीय बना देती है।डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदीजी कबीर के व्यक्तित्व के विषय में लिखते हैं– वे सिर से पैर तक मस्तमौला, स्वभाव से फक्कड, आदत से अक्खड, भक्त के सामने निरीह, धूर्त भेषधारी के आगे प्रचंड, दिल के साफ दिमाग के दुरुस्त भीतर से कोमल, बाहर से कठोर, जन्म से अस्पृश्य, कर्म से वंदनीय है। युगावतार की शक्ति और विश्वास लेकर वे पैदा हुए थे और युग प्रवृत्तक की दृढता उनमें वर्तमान थी इसलिए व युग प्रवर्तन कर सके।जनमानस का सन्ताप दूर करनेवाली सन्तों की पीयुष– वर्णी वाणी का मध्ययुगीन समाज पर व्यापक प्रभाव पडा । इतिहास में ऐसे उदाहरण है, सन्तों के कृतित्व, व्यक्तित्व और उपदेशों से प्रभावित होकर कई शासक स्वयं उनके पास आये या उन्हें सन्मानसहित आमन्त्रित किया। कबीरदास और नानक जैसे प्रमुख सन्तों ने ही नहीं उनके अनुयायियों ने भी अपने–अपने समय की जनता को प्रभावित किया। सन्तों के व्यक्तित्व का प्रभाव हिन्दुओं और मुसलमानों पर समान रूप से पड़ा। आज के वर्ग विद्वेष से ग्रस्त और त्रस्त विश्व को कवीर की घोषणा साई के सब जीव है, विश्वासमय तथा प्रेम और शांतिपूर्ण जीवन जीने का आशामय संकेत दे रही है। मध्ययुग के गहन कुहासें में कबीर की वाणी ने अमर आलोकका काम किया और आज का इंसान भी इससे बहुत कुछ प्रकाश पाता है।

सन्त काव्य सामाजिक, धार्मिक, राजनितीक तथा साहित्यिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण बन पड़ा है। सन्त कवियों ने धर्म का ऐसा स्वाभाविक, निश्छल, व्यापहारिक तथा विश्वासमय रूप जन भाषा में उपस्थित किया जो कि विश्वधर्म वन गया और आज भी जन जीवन में पुनः जागरण का पावन संदेश दे रहा है। सन्त कवियों ने साहित्य को सत्य, सौंदर्य और शिव से संपन्न किया है। सन्त सम्प्रदाय विश्व सम्प्रदाय हैं और उसका धर्म विश्वधर्म है और इस विश्वधर्म का मूलाधार है हृदय की पवित्रता।

वर्तमान परिदृश्य में कबीर साहित्य की प्रासंगिकता

कबीर पंद्रहवीं शताब्दी के संत थे, भक्तिकाल के कवियों मे वह प्रमुख रहस्यवादी कवि थे, उनके दोहे सुनने वाले लिख लेते थे या कंठस्त कर लेते थे क्योंकि कबीर अनपढ़ थे, पर ज्ञान का भंडार थे। उन्होने खुद कहा कि ''मसि कागज गह्यो नहीं, कलम नहीं छुओ हाथ।''सिख धर्म पर उनका प्रभाव स्पष्ट झलकता है।उनका पालन पोषण एक मुस्लिम जुलाहा परिवार मे हुआ था पर उन्होने अपना गुरू रामानंद को माना। जन्म स्थान के बारे में विद्वानों में मतभेद है परन्तु अधिकतर विद्वान इनका जन्म काशी में ही मानते हैं,जिसकी पुष्टि स्वयं कबीर का यह कथन भी करता है "काशी में परगट भये ,रामानंद चेताये "

हिन्दू कहें माहि राम पियारा, तुर्क कहें रहमाना,
आपस में दोउ लड़ी–लड़ी मुए, मरम न कोउ जाना।

आज जब पूरे विश्व मे धर्म के नाम पर आतंकवाद फैला हुआ है तब कबीर के दोहों को याद करना उन्हे जीवन मे उतारना बहुत प्रासंगिक लगता है। वे एक ही ईश्वर को मानते थे और कर्मकाँडों के घोर विरोधी थे। अवतार, मूर्ति, रोजा, ईद, मसजिद, मंदिर आदि को वे नहीं मानतेथे।कबीर के समय मे हिंदू जनता पर धर्मातंरण का दबाव था उन्होने अपने दोहों मे दोनो

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 9 Issue 6, June - 2019
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 6.939 |

धर्मो के कर्मकाँडों का विरोध किया और ईश्वर केवल एक है इस बात को तरह तरह से लोगों को सहज भाषा मे समझाया।उन्होने ज्ञान से ज्यादा महत्व प्रेम को दिया।–

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय,
ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय।

निम्नलिखित दोनो दो हों मे कबीर ने हिन्दू और इस्लाम दोनो धर्मोंके खोखलेपन को बताया है।मूर्ति पूजा को निरर्थक मानते हुए वो कहते हैं कि इससे अच्छी तो चक्की है, कि कुछ काम तो आती है।मुल्ला के बांग लगाने का भी वह उपहास करते हैं।ये दोहे आज इसिलिये बहुत प्रांसंगिक हो गये हैं क्योंकि आज धर्मों मे दिखावा बढ़ता जा रहा है,एक दूसरे कोनीचा दिखाने की होड सी लगी हई है।

पाहन पूजे हरि मिलैं, तो मैं पूजौं पहार।
वाते तो चाकी भली, पीसी खाय संसार।
कांकर पाथर जोड़िके मस्जिद ली बनाय
ता चढ़ मुल्ला बांग दे क्या बहरा हुआ खदाय।

कबीर को शांतिमय जीवन प्रिय था और वे अहिंसा, सत्य, सदाचार आदि गुणों के प्रशंसक थे।वो पराये दोष देखने से पहले अपने दोष देखने की बात कहते थे।–

दोस पराए देखि करि, चला हसन्त हसन्त,
अपने याद न आवई, जिनका आदि न अंत।

ये दोहा आज के संदर्भ मे बहुत प्रसंगिक है।राजनैतिक दलों पर ये बहुतसटीक बैठता है, जब कोई नेता विरोधी दल की किसी बुराई की ओर इंगित करता है सामनेवालाआरोप का उत्तर न देकर आरोप लगाने वाले कटघरे मे खड़ा कर देता है।स्वस्थ आलोचना कोई स्वीकार नहीं करता, जबकि स्वस्थ आलोचना का बहुत लाभ है।दृ

निंदक नियरे राखिए, ऑगन कुटी छवाय,
बिन पानी, साबुन बिना, निर्मल करे सुभाय।

इसी तरह आरोप प्रत्यारोप लगते रहते हैं और लोग अमर्यादित भाषा बोलने लगते हैं किसी भी सभ्य समाज मे अमर्यादत भाषा और अभद्र शब्दों का प्रयोग नहीं होना चाहिये किसी भी वजहसे वाणी मे कटुता नहीं आनी चाहिये। आज हर तरफ नफरत का महौल है, क्रोध है, जिस वजह से व्यक्ति अपना संतुलन खोता जा रहा है और किसी के लिये भी कड़वे व अभद्र बोल बोल देता है।हरेक से मृदु वाणी बोलने से व्यक्ति खुद भी शाँत रहता है और सुनने वाले भी शाँत हो जाते हैं।

ऐसी बानी बोलिये ,मन का आपा खोय,
औरन को सीतल करे आपहुं सीतल होय।

व्यर्थ की बातों मे बहस मे क्रियाकलापों मे आज हरेक इतना समय बरबाद कर देताहै। साधु यानि अच्छे लोगों को मुख्य बातों पर ही ध्यान देना चाहिये इस बात को सूप के माध्यम से कबीर ने बहुत सुन्दर तरीके से सझाया था।

साधु ऐसा चाहिए, जैसा सूप सुभाय,
सार–सार को गहि रहै, थोथा देई उड़ाय।
आज संचार के युग मे यह दोहा बहुत प्रासंगिक है।

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 9 Issue 6, June - 2019
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 6.939 |

बोली एक अनमोल है, जो कोई बोलै जानि,
हिये तराजू तौलि के, तब मुख बाहर आनि।

आजकल राजनैतिक दलों के नेता हों या अभिनेता बिना सोचे समझे बयानबाजी कर देते हैं संचार के युग मे बात कहीं से कहीं तुरन्त पंहुच जाती फिर वो सफाई देते रहते हैं कि उनका ये मतलब नहीं था, वो मतलब नहीं था, बात को संदर्भ सेअलग करके तोड़ मोड़ के पेश किया गया।उनके वकतव्य का मकसद किसी की भावनाओं को ठेस पहुंचाना नहीं था।इसलिये कबीर ने कहा था कि बहुत सोच समझ कर मुंह से बात निकालनी चहिये।

जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिये ज्ञान,
मोल करो तरवार का, पड़ा रहन दो म्यान।

कबीर जाति प्रथा को नहीं स्वीकार करते थे,उपर्युक्त दोहे मे उन्होंने स्पष्ट किया है कि साधु यानि गुणी लोगोंकी जाति नहीं पूछनी चाहिये उनके केवल गुण देखने चाहिये।आज जातिवाद का जो जहर समाज मे फैला है, कभी किसी जाति को आरक्षण चाहिये कभी किसी को,उनको कबीर का ये दोहा करारा जवाब है।जीवन मे संतुलन का महत्व समझाते हुए कबीर कहते हैं अधिकता किसी भी चीज की सही नहीं है।

अति का भला न बोलना, अति की भली न चूप,
अति का भला न बरसना, अति की भली न धूप।

किसी का ओहदे या आकर मे छोटा बड़ा होना महत्वपूण नहीं है,महत्वपूर्ण उसकी उपयोगिता है। निम्नलखित दोनो दोहे यही प्रमाणित करते हैं।–

बड़ा हुआ तो क्या हुआ जैसे पेड़ खजूर,
पंथी का छाया नहीं फल लगे अति दूर।
तिनका कबहुँ ना निन्दिये, जो पाँवन तर होय,
कबहुँ उड़ी आँखिन पड़े, तो पीर घनेरी होय।

आजकल धन दौलत ऐशो आराम के साधनो की दौड़ मे व्यक्ति सही गलत का अंतर भूल चुका है इसलिये भ्रष्टाचार, चोरी डकैती तथा दूसरे अपराध बढ़ रहे हैं। कबीर धन का महत्व मानते हैं पर बस इतना सा–

साईं इतना दीजिये, जा में कुटुम समाय,
मैं भी भूखा ना रहूँ, साधू ना भूखा जाय।

लालच काअंत ऐसा भी होता है–

मक्खी गुड में गडी रहे, पंख रहे लिपटाये,
हाथ मले और सिर ढूंढे, लालच बुरी बलाये।
संतोष का अर्थ समझाने के लिये वो लिखते हैं–
चाह मिटी, चिंता मिटी, मनवा बेपरवाह,
जिसको कुछ नहीं चाहिए वह शहनशाह।

महत्वाकाँक्षी होना गलत नहीं है पर उसके लियेएक अंधी दौड़ मे लगकर अपना सुख चौन गंवाना सही नहीं है क्यों कि सब काम अपने समय से ही होते हैं। आज का व्यक्ति सब कुछ बहुत जल्दी पाना चाहता है पर सब काम अपने समय पर ही होते हैं–

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 9 Issue 6, June - 2019
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 6.939 |

धीरे–धीरे रे मना, धीरे सब कुछ होय,

माली सींचे सौ घड़ा, ऋतु आए फल होय।

आजकल कुछ सनातनियों ने शिरडी के साँई बाबा पर विवाद शुरू कर दिया है।कबीर की तरह ही शिरडी के साँईबाबा के जन्मदेने वाले माता पिता के बारे मे कोई सही जानकारी नहीं है।कबीर की तरह ही साँईबाबा के चाहने वाले हिन्दूऔर मुसलमान दोनो धर्मो से थे। साँई कभी अल्लाह साँई का उच्चारण भी करते थे।दोनो ने हमेशा एक ही ईश्वर को माना इन दोनो के राम दशरथ पुत्र राम नहीं बल्कि निराकार परमात्मा थे। इनके हरि और राम एक ही थे।

कालांतर मे कबीर के ज्ञान को समझने और अपनाने वाले लोग कबीर पंथी कहलाने लगे पर उनके मंदिर नहीं बने,पर शिरडी के साँई बाबा का मंदिर शिरडी मे बना, पूरे हिन्दू रीति रिवाजों से यहाँ उनकी पूजा होने लगी, संभवतः इसलिये मुसलमानों का मोह साँई बाबा से नहीं रहा।धीरे धीरे मंदिर बहुत भव्य होगया और देश विदेश मे बाबा के भक्तों और मंदिरों की संख्या बढ़ने लगी।चढ़ावा भी बहुत आने लगा। कुछ साल से सांई बाबा के विरोध मे शँकाचार्य के नेतृत्व मे साँई विरोध मे एक बड़ा तबका खड़ा हो गया उनका मानना है कि साँई हमारे देवी देवाओं के समक्ष नहीं रह सकते क्योंकि वो मुसलिम फकीर थे।मुस्लिम तो कबीर भी थे, यदि साँई बाबा की पूजा अर्चना हिंदू न करते तो वो भी संत फकीर ही थे।यहाँ साँई बाबा का विरोध उनके जीवन काल के सौ साल बाद शुरू हुआ जबकि कबीर का विरोध उनके जीवनकाल मे हिंदू मुस्लिम दोनो ने किया था, पर मृत्यु के बाद दोनो कौमे उनको अपनाने के लिये आतुर थी।**यहाँ साँई बाबा का जिक्र करन का मकसद केवल कबीर की प्रासंगिकता बताना है, दोनो के प्रेम के संदेश की व्यापकता पर विचार करना है।**

कबीर के राम तो अगम हैं और संसार के कण–कण में विराजते हैं। कबीर के राम इस्लाम के एकेश्वरवादी, एकसत्तावादी खुदा भी नहीं हैं। इस्लाम में खुदा या अल्लाह को समस्त जगत एवं जीवों से भिन्न एवं परम समर्थ माना जाता है। पर कबीर के राम परम समर्थ भले हों, लेकिन समस्त जीवों और जगत से भिन्न तो कदापि नहीं हैं। बल्कि इसके विपरीत वे तो सबमें व्याप्त रहने वाले रमता राम हैं। वह कहते हैं

व्यापक ब्रह्म सबनिमैं एकै, को पंडित को जोगी। रावण–राव कवनसूं कवन वेद को रोगी।

कबीर की दृढ़ मान्यता थी कि कर्मों के अनुसार ही गति मिलती है स्थान विशेष के कारण नहीं। अपनी इस मान्यता को सिद्ध करने के लिए अंत समय में वह मगहर चले गए यक्योंकि लोगों मान्यता थी कि काशी में मरने पर स्वर्ग और मगहर में मरने पर नरक मिलता है।

निष्कर्ष–

कबीर की हर बाते आज उतनी ही प्रासंगिक है जितनी उनके समय मे थी।आजकल धार्मिक कर्मकाँडों को बहुत ही विकृत रूप समाज मे दिख रहा है। राजनैतिक लाभ के लिये धार्मिक भावानाओं उकसाया जाता है। ऐसे मे कबीर को पढ़ना समझना और जीवन मे उतारना साँप्रदायिक सद्भाव बनाये रखने मे मदद कर सकता है।

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 9 Issue 6, June - 2019
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 6.939 |

सन्दर्भ ग्रंथ

1 कबीर वाङ्मय, लेखक, डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, प्रकाशक– राजकमल प्रकाशन, प्रकाशन वर्ष 1942 (प्रथम संस्करण), बाद में पुनःप्रकाशित।

2 कबीररू वर्तमान संदर्भ और प्रासंगिकता लेखक, प्रो. पुरुषोत्तम अग्रवाल प्रकाशक,वाणी प्रकाशन ,प्रकाशन वर्ष 2010।

3. कबीर का समाज दर्शन ,लेखक –डॉ. रामआसरे मिश्रा ,प्रकाशक– प्रभात प्रकाशन प्रकाशन वर्ष 2015।

4. कबीर एक पुनर्पाठ ,लेखक– अजय प्रकाश प्रकाशक, लोकभारती प्रकाशन , प्रकाशन वर्ष 2005।

5. कबीर जीवन और दर्शन, लेखक– डॉ. मृदुल कीर्ति ,प्रकाशक– साहित्य भवन प्रकाशन ,प्रकाशन वर्ष 2018।

6. कबीर और उनका युग ,लेखक– श्यामसुंदर दास, प्रकाशक –नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, प्रकाशन वर्ष 1919 (क्लासिक साहित्य)।

7. कबीर ग्रंथावली ,संपादक– डॉ. सत्यपाल सिंह, प्रकाशक– चौखंबा विद्याभवन, प्रकाशन वर्ष 1997।

8. कबीर चिंतन और विमर्श ,लेखक, डॉ. धर्मवीर ,प्रकाशक –साहित्य अकादमी ,प्रकाशन वर्ष 2008।

9. कबीर और आधुनिक भारत, लेखक–गोविंद चंद्र पांडे ,प्रकाशक, मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन वर्ष 1980।

10. कबीर दर्शन ,लेखक –रामनाथ शर्मा, प्रकाशक किटाब महल प्रकाशन वर्ष – 2000।

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 9 Issue 6, June - 2019
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 6.939 |

11. कबीर की काव्य दृष्टि, लेखक डॉ. रामचंद्र शुक्ल, प्रकाशक, राजकमल प्रकाशन ,प्रकाशन वर्ष 1954।

12. कबीर का समग्र साहित्य ,लेखक विश्वनाथ त्रिपाठी, प्रकाशक लोकभारती ,प्रकाशन प्रकाशन वर्ष 2012।

13. कबीर और भारतीय चेतना ,लेखक ,कमल किशोर गोयनका प्रकाशक, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रकाशन वर्ष 2016।

14. कबीर मिथक और यथार्थ ,लेखक, डॉ. नामवर सिंह, प्रकाशक, वाणी प्रकाशन ,प्रकाशन वर्ष, 1996।

15. कबीर के दोहे और उनकी प्रासंगिकता ,लेखकष डॉ. भगवानदास माहेश्वरी प्रकाशक,डायमंड पब्लिकेशन, प्रकाशन वर्ष 2015।

16. कबीर और धर्मनिरपेक्षता ,लेखक– डॉ. विनोद वर्मा ,प्रकाशक– यश पब्लिकेशन ,प्रकाशन वर्ष 2010।

17 हिन्दी साहित्य रू युग और प्रवृत्तियाँ, डॉ. शिवकुमार – शर्मा।
18 हिन्दी साहित्य का इतिहास ,डॉ. नरेंद्र।
19 हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ ,डॉ. जयकिशन प्रसाद ।

❖